घर जमाई

प्रेमचंद

घर जमाई

प्रेमचंद

घर जमाई

हरिधन जेठ की दुपहरी में ऊख में पानी देकर आया और बाहर बैठा रहा। घर में से धुआँ उठता नजर आता था। छन-छन की आवाज भी आ रही थी। उसके दोनों साले उसके बाद आये और घर में चले गए। दोनों सालों के लड़के भी आये और उसी तरह अंदर दाखिल हो गये; पर हरिधन अंदर न जा सका। इधर एक महीने से उसके साथ यहाँ जो बर्ताव हो रहा था और विशेषकर कल उसे जैसी फटकार सुननी पड़ी थी, वह उसके पाँव में बेड़ियाँ-सी डाले हुए था। कल उसकी सास ही ने तो कहा, था, मेरा जी तुमसे भर गया, मैं तुम्हारी जिंदगी-भर का ठीका लिये बैठी हूँ क्या ? और सबसे बढ़कर अपनी स्त्री की निष्ठुरता ने उसके हृदय के टुकड़े-टुकड़े कर दिये थे। वह बैठी यह फटकार सुनती रही; पर एक बार तो उसके मुँह से न निकला, अम्माँ, तुम क्यों इनका अपमान कर रही हो ! बैठी गट-गट सुनती रही। शायद मेरी दुर्गति पर खुश हो रही थी। इस घर में वह कैसे जाय ? क्या फिर वही गालियाँ खाने, वही फटकार सुनने के लिए ? और आज इस घर में जीवन के दस साल गुजर जाने पर यह हाल हो रहा है। मैं किसी से कम काम करता हूँ ? दोनों साले मीठी नींद सो रहते हैं और मैं बैलों को सानी-पानी देता हूँ; छाँटी काटता हूँ। वहाँ सब लोग पल-पल पर चिलम पीते हैं, मैं आँखें बन्द किये अपने काम में लगा रहता हूँ। संध्या समय घरवाले गाने-बजाने चले जाते हैं, मैं घड़ी रात तक गाय-भैंसे दुहता रहता हूँ। उसका यह पुरस्कार मिल रहा है कि कोई खाने को भी नहीं पूछता। उल्टे गालियाँ मिलती हैं।

उसकी स्त्री घर में से डोल लेकर निकली और बोली- जरा इसे कुएँ से खींच लो। एक बूँद पानी नहीं है।